

वैश्विक आतंकवाद के मुद्दों पर अंतरराष्ट्रीय सहयोग एक मिथक या वास्तविकता

Dr Survind Kumar

Department of political science
B.R.A.Bihar University, Muzaffarpur

Abstract:

दुनिया दुनिया में विज्ञान जीवन के लिए जहाँ सृजन है तो वहीं यह जीवन के लिए विनाश भी साबित हुआ है। दुनिया के मुट्ठीभर आबादी विज्ञान का उपयोग सृजन की बजाए विध्वंस के लिए करना चाहती हैं। वस्तुतः आतंकवाद की कोख में विध्वंस का यहीं भयावह तत्व छिपा हुआ है। आतंकवादी दिमाग पर नियन्त्रण करने के मामले में उस्ताद होते हैं। वे बहुत थोड़े-से लोगों को मारते हैं लेकिन तब भी करोड़ों लोगों को दहशत से भर देने और यूरोपीय यूनियन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे विशालकाय राजनीतिक ढाँचों को तहस-नहस कर देने में कामयाब हो जाते हैं। 11 सितम्बर 2001 के बाद से आतंकवादियों ने हर साल लगभग पचास लोगों को यूरोपीय यूनियन में लगभग दस लोगों को संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग सात लोगों को चीन में और 25000 हज़ार तक लोगों को वैश्विक स्तर पर (ज़्यादातर इराक़, अफ़गानिस्तान, पाकिस्तान, नाइजीरिया और सीरिया में) मारा है। इसके विपरीत, हर साल यातायात दुर्घटनाएँ लगभग 80000 यूरोपियों की 40000 अमेरिकियों की 270000 चीनियों की और कुल मिलाकर 12.5 लाख लोगों की जानें लेती हैं। मधुमेह (डायबिटीज़) और शुगर का उच्च स्तर हर साल 35 लाख तक लोगों की जान ले लेता है जबकि वायु-प्रदूषण से लगभग 70 लाख लोग मरते हैं। तब फिर हम शकर की बजाय आतंकवाद से इतना ज़्यादा क्यों डरते हैं और क्या वज़ह है कि सरकारें छिटपुट आतंकवादी हमलों की वज़ह से तो चुनाव हार जाती हैं लेकिन स्थायी वायु-प्रदूषण की वज़ह से चुनाव नहीं। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं सभी समस्याओं का तार्किक विश्लेषण किया गया है।

Keywords: आतंकवाद, अंतरराष्ट्रीय सहयोग, जलवायु परिवर्तन, मिथक, विषमता

Discussion :

आतंकवाद का शाब्दिक अर्थ संकेत करता है यह एक सैन्य रणनीति है जो किसी तरह का माली नुकसान पहुँचाए बिना दहशत फैलाकर राजनीतिक स्थिति को बदलने की उम्मीद करती है। यह रणनीति लगभग हर वक़्त उन बहुत कमज़ोर पक्षों द्वारा अपनाई जाती है जो अपने शत्रुओं को बहुत ज़्यादा माली नुक़सान नहीं पहुँचा सकते। निश्चय ही हर सैन्य कार्रवाई दहशत फैलाती है लेकिन पारम्परिक युद्धों में दहशत माली नुक़सान का एक आनुषंगिक उत्पाद होता है और वह आम तौर से नुक़सान पहुँचाने वाली शक्ति के अनुपात में होता है। आतंकवाद में दहशत मुख्य कहानी होती है और आतंकवादियों की वास्तविक सामर्थ्य तथा उनके द्वारा जगाई जा सकी दहशत के बीच विस्मयकारी विषमता होती है।

हिंसा की मार्फ़त राजनीतिक स्थिति को बदलना हमेशा ही आसान होता है। सोम की लड़ाई के पहले दिन 1 जुलाई 1916 को 19000 ब्रितानी सैनिक मारे गए थे और 40000 सैनिक घायल हुए थे। नवम्बर में युद्ध के समाप्त होने तक दोनों पक्षों के दस लाख से ज़्यादा लोग हताहत हुए थे जिनमें 300000 मृतक शामिल थे। लेकिन इस भयावह हत्याकाण्ड ने यूरोप के राजनीतिक शक्ति-सन्तुलन में कोई खास बदलाव पैदा नहीं किया था। इसके बाद दो वर्ष का समय और लाखों और लोगों के हताहत होने के बाद ही अन्ततः कोई टूटन पैदा हुई थी। इस सोम आक्रमण की तुलना में आतंकवाद एक अदना-सा मसला है। 2002 में इज़रायल के खिलाफ़ फ़िलिस्तीनियों की आतंकवादी मुहिम की पराकाष्ठा के दिनों में जब हर दिन बसों और रेस्तराओं को बमों से उड़ाया जा रहा था तब इज़रायली मृतकों की सालाना संख्या 451 पर पहुँची थी। उसी साल 542 इज़रायली कार दुर्घटनाओं में मारे गए थे। कुछ आतंकवादी हमले जैसे कि 1988 में पैन एम्प्लाइट 103 की बमबारी में सैकड़ों लोग मरते हैं। 9/11 हमलों ने 3000 लोगों को मारकर एक रिकॉर्ड क़ायम किया था। तब भी यह सब पारम्परिक युद्धों में चुकाई गई क़ीमतों के सामने बौना पड़ जाता है। अगर आप 1945 के बाद से यूरोप में आतंकवादी हमलों में मारे गए लोगों की कुल संख्या जोड़ लें जिनमें राष्ट्रवादी, मज़हबी, वामपन्थी और दक्षिणपन्थी समूहों के शिकार हुए लोग समान रूप से शामिल हैं तो यह कुल संख्या प्रथम विश्वयुद्ध के तहत हुई किन्हीं भी अज्ञात लड़ाइयों के हताहतों की संख्या जैसे कि आइन की तीसरी लड़ाई (250000 हताहत) या आइज़ोन्ज़ों की दसवीं लड़ाई (225000) के सामने कम पड़ती है। तब फिर आतंकवादी किसी बड़ी उपलब्धि की उम्मीद कैसे कर सकते हैं। किसी आतंकवादी कार्रवाई के बाद दुश्मन के पास सैनिकों/टैंकों और जहाज़ों की संख्या पहले जितनी ही बनी रहती है। दुश्मन का संचार-तन्त्रसड़कें और रेलमार्ग मोटे तौर पर जस-के-तस बने रहते हैं। उसके कारख़ाने-बन्दरगाह और सैनिक ठिकानों को शायद ही छुआ गया होता है लेकिन आतंकवादी उम्मीद करते हैं कि वे भले ही दुश्मन की माली ताक़त को खरोच तक न पहुँचा पाएँ तब भी दहशत और भ्रम दुश्मन को

उसकी सुरक्षित ताक़त के दुरुपयोग की अति प्रतिक्रिया करने को मजबूर कर देंगे। आतंकवादी हिसाब लगाते हैं कि जब गुस्साया हुआ दुश्मन उनके खिलाफ़ अपनी भीषण शक्ति का इस्तेमाल करेगा तो वह उससे कहीं ज़्यादा हिंसक सशस्त्र बल और राजनीतिक अन्धड़ खड़ा करेगा जितना आतंकवादी स्वयं कभी तैयार कर सकते हैं। हर अन्धड़ के दौरान बहुत-सी अप्रत्याशित घटनाएँ घटित होती हैं।

गलतियाँ होती हैं अत्याचार किए जाते हैं जनमत लड़खड़ा जाता है तटस्थ लोग अपना रुख बदल लेते हैं और शक्ति-सन्तुलन बदल जाता है। इस तरह आतंकवादी उस मक्खी की तरह होते हैं जो चीनी मिट्टी के बर्तनों की किसी दुकान को तबाह कर देना चाहती है। मक्खी इतनी कमज़ोर होती है कि वह एक कप को भी डिगा नहीं सकती। तब फिर वह मक्खी चीनी मिट्टी के बर्तनों की उस दुकान को कैसे तबाह करती है वह एक बैल को ढूँढती है उसके कान में घुस जाती है और भनभनाना शुरू कर देती है। यह बैल खौफ़ और गुस्से से बौखला उठता है और चीनी मिट्टी के बर्तन की उस दुकान में घुसकर उसको तबाह कर देता है। 9/11 के बाद यही हुआ था जब इस्लामी कट्टरपन्थियों ने मध्य पूर्व रूपी चीनी मिट्टी के बर्तनों की दुकान को तबाह करने के लिए अमेरिकी बैल को भड़काया था। अब वे उस तबाही के बाद के भग्नावशेषों पर फलफूल रहे हैं। और इस दुनिया में गुस्सैल बैलों की कमी नहीं है। ताश के पत्तों का फेंटा जाना आतंकवाद एक बहुत ही अनाकर्षक सैन्य रणनीति है क्योंकि यह सारे महत्त्वपूर्ण फ़ैसले दुश्मन के हाथ में छोड़ देती है। चूँकि हमले से पहले दुश्मन के पास जो भी विकल्प होते हैं वे हमले के बाद भी उसके पास बने रहते हैं वह उनके बीच चुनाव करने के लिए पूरी तरह से स्वतन्त्र होता है। सेनाएँ इस तरह की स्थिति को किसी भी क्रीम पर टालने की कोशिश करती हैं। जब वे हमला करती हैं तो वे कोई ऐसा भयानक मंज़र खड़ा नहीं करना चाहतीं जो दुश्मन को नाराज़ कर उसको उलटकर हमला करने के लिए भड़का दे। इसकी बजाय वे दुश्मन को कोई बड़ा माली नुक़सान पहुँचाने और बदले की कार्रवाई करने की उसकी सामर्थ्य को कम करने की फ़िराक़ में होती हैं खासतौर से उसके सबसे ख़तरनाक हथियारों और विकल्पों को नष्ट करना चाहती हैं। उदाहरण के लिए जापान ने यही किया था जब 1941 में उसने संयुक्त राज्य अमेरिका पर आकस्मिक हमला कर पर्लहार्बर में संयुक्त राज्य के प्रशान्त नौसैनिक बेड़े को डुबा दिया था। यह आतंकवाद नहीं था। यह युद्ध था। जापान को इसकी कोई निश्चित जानकारी नहीं थी कि अमेरिकी इस हमले के जवाब में किस तरह की बदले की कार्रवाई करेंगे सिवाय एक बात के : अमेरिकी जो भी कुछ करने का फ़ैसला करेंगे वे 1942 में फ़िलिपीन्स या हांगकांग में नौसैनिक बेड़ा नहीं पहुँचा पाएँगे। दुश्मन के किन्हीं हथियारों या विकल्पों को तबाह किए बिना उसको कार्रवाई के लिए भड़काना एक हताश कार्रवाई है जो केवल तभी की जाती है जब कोई और विकल्प नहीं होता। जब कभी भी कोई गम्भीर माली नुक़सान पहुँचाना सम्भव होता है तब कोई भी महज़ आतंकवाद की खातिर इस विकल्प को नहीं त्यागता। अगर दिसम्बर 1941 में जापान ने संयुक्त राज्य अमेरिका को भड़काने के लिए प्रशान्त नौसैनिक बेड़े को पर्लहार्बर में अक्षत रखते हुए असैनिक यात्रियों से भरे किसी जहाज़ को उड़ा दिया होता तो यह एक पागलपन होता। लेकिन आतंकवादियों के पास कोई ख़ास विकल्प नहीं होता है। वे इतने कमज़ोर होते हैं कि वे युद्ध नहीं छेड़ सकते। इसलिए वे उसकी बजाय एक ऐसा नाटकीय मंज़र पैदा करने का विकल्प चुनते हैं इस उम्मीद के साथ कि वह दुश्मन को भड़काकर उसको अतिवादी प्रतिक्रिया करने के लिए मजबूर कर दे। आतंकवादी हिंसा का एक ऐसा खौफ़नाक नज़ारा पैदा करते हैं जो हमारी कल्पना को उत्तेजित कर उसको हमारे ही खिलाफ़ मोड़ देता है। आतंकवादी मुट्ठी-भर लोगों की हत्या कर लाखों लोगों के मन में जान से हाथ धो बैठने का खौफ़ पैदा कर देते हैं। इन डरों को शान्त करने के लिए सरकारें आतंक के इस नाटक पर प्रतिक्रियास्वरूप सैन्य बलों के अपरिमित प्रदर्शन जैसे कि पूरी-की-पूरी आबादियों पर अत्याचार या विदेशी मुल्कों पर हमले आदि की योजनाएँ बनाते हुए सुरक्षा का प्रदर्शन करती हैं। ज़्यादातर मामलों में आतंकवाद के प्रति यह अतिवादी प्रतिक्रिया हमारी सुरक्षा के समक्ष उससे ज़्यादा ख़तरा पैदा करती है जितना स्वयं आतंकवादी करते हैं। इसलिए आतंकवादी फ़ौज के जनरलों की तरह नहीं सोचते। इसकी बजाय वे नाटककारों के अन्दाज़ में सोचते हैं।

9/11 हमलों की सार्वजनिक स्मृति इस बात की गवाही देती है कि इस बात को हर कोई सहज ढंग से समझता है। अगर आप लोगों से पूछें कि 9/11 को क्या हुआ था तो पूरी सम्भावना है कि वे कहें कि अल-क़ायदा ने वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की जुड़वाँ मीनारों को धराशायी कर दिया था लेकिन यह हमला सिर्फ़ इन मीनारों तक ही सीमित नहीं था बल्कि दो अन्य कार्रवाईएँ विशेष रूप से पेंटागॉन पर कामयाब हमला भी इसमें शामिल थीं। क्या वज़ह है कि इसकी याद बहुत थोड़े-से लोगों को है अगर 9/11 कार्रवाई एक पारम्परिक सैन्य मुहिम होती तो पेंटागॉन हमले पर ज़्यादा ध्यान जाना चाहिए था। इस हमले में अल-क़ायदा दुश्मन के केन्द्रीय सैन्य मुख्यालयों के कुछ हिस्सों को नष्ट करने में विरिष्ठ कमांडरों और विश्लेषकों को मारने और घायल करने में सफल हुआ था। क्या वज़ह है कि सार्वजनिक स्मृति दो असैनिक इमारतों के ध्वंस और शेयर-दलालों लेखापालों और क्लर्कों की मौतों को कहीं ज़्यादा महत्त्व देती है ऐसा इसलिए है क्योंकि पेंटागॉन एक अपेक्षाकृत सपाट और सादी इमारत है जबकि वर्ल्ड ट्रेड सेंटर एक विशाल खड़ा हुआ महत्त्वपूर्ण प्रतीक था जिसके धराशायी होने ने ज़बरदस्त दृश्य-श्रव्य प्रभाव पैदा किया था। जिस किसी ने भी उसके धराशायी होने के दृश्य देखे थे वह उनको कभी नहीं भूल सकता क्योंकि हम अन्दर से इस बात को समझते हैं कि आतंकवाद नाटक है इसलिए हम उसको उसके भौतिक प्रभाव की बजाय उसके भावनात्मक प्रभाव के आधार पर परखते हैं। आतंकवादियों की ही तरह आतंकवाद का मुकाबला कर रहे लोगों को भी

नाटककारों की तरह ज़्यादा और फ़ौजी जनरलों की तरह कम सोचना चाहिए। आख़िरकार अगर हम आतंकवाद का कारगर ढंग से मुक़ाबला करना चाहते हैं तो हमें यह समझना चाहिए कि आतंकवादी जो कुछ भी करते हैं वह हमें पराजित नहीं कर सकता। अगर हम आतंकवादियों के भड़कावे में आकर गुमराह तरीक़े से अतिवादी प्रतिक्रिया करते हैं तो खुद हम ही अपने हाथों पराजित हो सकते हैं। आतंकवादी एक असम्भव मुहिम में लगे होते हैं : सैन्य-शक्ति न होने के बावजूद हिंसा के रास्ते राजनीतिक शक्ति-सन्तुलन को बदलना। अपने इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए आतंकवादी राज्य को उसकी अपनी एक असम्भव चुनौती सौंपते हैं : यह साबित करने की चुनौती कि वह कहीं भी किसी भी समय राजनीतिक हिंसा से अपने नागरिकों की रक्षा कर सकता है। आतंकवादी उम्मीद करते हैं कि जब राज्य इस असम्भव मुहिम को पूरा करने की कोशिश करेगा तो वह राजनीतिक ताश के पत्तों को नए सिरे से फेंटेगा और उनके हाथ में कुछ अप्रत्याशित इक्के थमा देगा। यह सही है कि जब राज्य इस चुनौती पर प्रतिक्रिया करता है तो वह आम तौर से आतंकवादियों को कुचलने में सफल होता है। पिछले कुछ दशकों के दौरान विभिन्न देशों द्वारा सैकड़ों आतंकवादी संगठनों को मिटा दिया गया था। 2002-04 में इज़रायल ने साबित कर दिया था कि सबसे उग्र आतंकवादी मुहिमों तक को कठोर बल-प्रयोग के माध्यम से कुचला जा सकता है। आतंकवादी अच्छी तरह से जानते हैं कि इस तरह के टकराव में परिस्थितियाँ उनके खिलाफ़ होती हैं लेकिन चूँकि वे बहुत कमज़ोर होते हैं और उनके पास कोई अन्य सैन्य विकल्प नहीं होते हैं इसलिए उनके पास खोने के लिए कुछ नहीं होता है और हासिल करने के लिए बहुत कुछ होता है। कभी-कभार आतंकवाद-विरोधी मुहिमों द्वारा पैदा की गई उग्र राजनीतिक प्रतिक्रियाएँ आतंकवादियों को फ़ायदा पहुँचाती हैं। यही वज़ह है कि यह जुआ खेलने लायक बनता है। एक आतंकवादी उस जुआरी की तरह होता है जिसके हाथ ग़लत पत्ते लग गए होते हैं और वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों को पत्ते फेंटने को राज़ी करने की कोशिश करता है। वह हार कुछ नहीं सकता और जीत सब कुछ सकता है। एक बड़े ख़ाली घड़े में छोटा-सा सिक्का। राज्य को पत्ते फेंटने के लिए राज़ी क्यों होना चाहिए चूँकि आतंकवादियों द्वारा पहुँचाया गया माली नुक़सान नगण्य होता है इसलिए राज्य या तो सैद्धान्तिक तौर पर उसके बारे में कुछ नहीं कर सकता या कैमरों और माइक्रोफ़ोनों की निगाहों से बहुत दूर मज़बूत किन्तु विवेकपूर्ण उपाय अपना सकता है। वाक़ई राज्य कभी-कभी ठीक ऐसा ही करते हैं लेकिन कभी-कभी राज्य अपना आपा खो बैठते हैं और बहुत ज़्यादा तीव्र और सार्वजनिक प्रतिक्रिया करते हैं और इस तरह आतंकवादियों की शर्तों पर खेलने लगते हैं। आख़िरकार राज्य आतंकवादियों के भड़कावों के प्रति इतने संवेदनशील क्यों होते हैं राज्यों के लिए इन भड़कावों को सह पाना इसलिए मुश्किल होता है क्योंकि आधुनिक राज्य की वैधता सार्वजनिक क्षेत्र को राजनीतिक हिंसा से मुक्त रखने के आश्वासन पर टिकी होती है। कोई शासन-व्यवस्था भयावह विनाशों को सह सकती है और उनको नज़रअन्दाज़ तक कर सकती है बशर्ते कि उसकी वैधता उनको रोकने पर न टिकी हो। दूसरी ओर अगर एक छोटी-सी समस्या को भी किसी शासन-व्यवस्था की वैधता को कमज़ोर करने वाली समस्या की तरह देखा जाता है तो वह शासन-व्यवस्था उस समस्या की वज़ह से ध्वस्त हो सकती है। चौदहवीं सदी में ब्लैक डैथ ने यूरोपीय आबादियों के एक चौथाई और आधे हिस्से के बीच की संख्या में लोगों की जानें ले ली थीं तब भी इसके नतीजे में किसी राजा को अपना सिंहासन नहीं गँवाना पड़ा था और किसी भी राजा ने इस महामारी पर विजय पाने के लिए बहुत ज़्यादा कोशिश नहीं की थी। तब कोई नहीं सोचता था कि महामारियों को रोकना राजा के कर्तव्यों में शामिल है। दूसरी ओर जो शासक अपने अधिकार-क्षेत्रों में विधर्मिता की छूट देते थे उनको अपना राजमुकुट और सिर तक गँवा देने का जोखिम उठाना पड़ता था।

आज एक सरकार आतंकवाद की बजाय घरेलू और यौनपरक हिंसा को लेकर नरम रवैया अपना सकती है क्योंकि जैसे आन्दोलनों के प्रभाव के बावजूद बलात्कार सरकार की वैधता को कम नहीं करता। फ़्रांस में हर वर्ष बलात्कार के 10000 से ज़्यादा प्रकरण दर्ज किए जाते हैं और सम्भवतः दसियों हज़ार प्रकरण ऐसे होते हैं जिनकी सूचना नहीं दी गई होती है। लेकिन बलात्कारियों और अत्याचारी पतियों को फ़्रांस के राज्य के लिए अस्तित्वपरक ख़तरे के रूप में नहीं देखा जाता क्योंकि ऐतिहासिक तौर पर राज्य ने स्वयं को यौनपरक हिंसा के उन्मूलन के आश्वासन पर खड़ा नहीं किया था। इसके विपरीत आतंकवाद के तुलनात्मक रूप से विरले प्रकरणों को फ़्रांसीसी गणराज्य के लिए घातक ख़तरे के रूप में देखा जाता है क्योंकि पिछली कुछ सदियों से आधुनिक पश्चिमी राज्य अपनी वैधता उत्तरोत्तर अपनी सरहदों के भीतर किसी भी तरह की राजनीतिक हिंसा को न सहने के स्पष्ट आश्वासन पर विकसित करते गए हैं। मध्य युग में सार्वजनिक क्षेत्र राजनीतिक हिंसा से भरा हुआ था। सच तो यह है कि हिंसा का इस्तेमाल करने की योग्यता राजनीतिक खेल में शामिल होने का प्रवेश-पत्र हुआ करती थी और जिस किसी में भी यह योग्यता नहीं होती थी उसकी कोई राजनीतिक हैसियत नहीं होती थी। असंख्य कुलीन परिवार थे जिन्होंने सशस्त्र बलों को अपने पास बरकरार रखा था उसी तरह नगरों निकायों चर्चों और मठों के अपने सैन्य बल हुआ करते थे। जब किसी पूर्व मठाधीश की मृत्यु हो जाती थी और उसके उत्तराधिकारी को लेकर विवाद खड़ा हो जाता था तो प्रतिद्वन्द्वी घड़े के लोगजिनमें संन्यासीस्थानीय बाहुबली और सम्बन्धित पड़ोसी शामिल होते थे अक्सर इस मसले का फ़ैसला करने के लिए सशस्त्र बलों का इस्तेमाल किया करते थे। इस तरह की दुनिया में आतंकवाद के लिए कोई स्थान नहीं था। जो भी कोई व्यक्ति ख़ासी मात्रा में माली नुक़सान पहुँचाने लायक ताक़त नहीं रखता था उसकी कोई अहमियत नहीं होती थी। अगर 1150 में कुछ मुसलमानों ने यरुशलम में धर्मयोद्धाओं से पवित्र भूमि छोड़कर चले जाने की माँग करते हुए मुट्टी-भर असैनिक नागरिकों की हत्या कर दी होती तो इसकी प्रतिक्रिया आतंक से ज़्यादा उपहास पैदा करने वाली होती। अगर आप चाहते कि आपको संजीदगी से लिया जाए तो इसके लिए आपको कम-से-कम एक-दो मज़बूत दुर्गों को अपने नियन्त्रण

में लेना ज़रूरी होता। आतंकवाद हमारे मध्ययुगीन पूर्वजों को तंग नहीं करता था क्योंकि उनके सामने कहीं ज़्यादा बड़ी समस्याएँ थीं जिनसे उनको निपटना ज़रूरी होता था। आधुनिक युग के दौरान केन्द्रीकृत राज्य अपने अधिकार-क्षेत्रों के भीतर राजनीतिक हिंसा के स्तर को धीरे-धीरे कम करते गए और पिछले कुछ दशकों के दौरान पश्चिमी मुल्क इसको पूरी तरह से खत्म करने में सफल रहे हैं। फ्रांसब्रिटेन या संयुक्त राज्य अमेरिका के नागरिक बिना किसी सशस्त्र बल के नगरोंप्रतिष्ठानोंसंगठनों और स्वयं सरकारों तक को नियन्त्रण में लेने के लिए संघर्ष कर सकते हैं। खरबों डॉलरोंलाखों सैनिकोंऔर हज़ारों जहाज़ोंवायुयानों और परमाणु प्रेक्षपास्तों का नियन्त्रण राजनेताओं के समूह के हाथों से दूसरे समूह के हाथों में जाता रहता हैजिस दौरान एक भी गोली नहीं दागनी पड़ती। लोग जल्दी-से इसके अभ्यस्त हो जाते हैंऔर इसे अपना कुदरती अधिकार समझने लगते हैं। इसके परिणामतःराजनीतिक हिंसा की छिटपुट वारदातों तक कोजो कुछ दर्जन लोगों की जानें लेती हैंराज्य की वैधता और उसके बचे रहने तक के लिए घातक खतरे की तरह देखा जाता है। एक बड़े खाली घड़े में पड़ा एक छोटा-सा सिक्का बहुत आवाज़ करता है। यही है वह चीज़ जो आतंकवाद के नाटक को इतना कामयाब बनाती है। राज्य ने राजनीतिक हिंसा से खाली एक विराट जगह तैयार कर दी हैजो अब एक साउंडिंग बोर्ड की भूमिका निभाती हुई किसी भी सशस्त्र हमले के प्रभाव कोवह चाहे कितना ही छोटा क्यों न होदूर-दूर तक पहुँचा देती है। किसी खास राज्य में जितनी कम राजनीतिक हिंसा होती हैआतंकवाद के कृत्य से वहाँ उतना ही ज़्यादा सार्वजनिक आघात पहुँचता है। बेल्जियम में थोड़े-से लोगों की हत्या उससे कई गुना ज़्यादा लोगों का ध्यान खींचती हैजितनों का नाइज़ीरिया या इराक़ में सैकड़ों लोगों की हत्या खींचती है। ऐसे मेंविरोधाभास यह है कि राजनीतिक हिंसा को रोकने की आधुनिक राज्यों की सफलता ही इन राज्यों को आतंकवाद के प्रति विशेष रूप से असुरक्षित या संवेदनशील बना देती है। राज्य इस बात पर कई बार बल दे चुका है कि वह अपनी सरहदों के भीतर राजनीतिक हिंसा को बर्दाश्त नहीं करेगा। वहीं नागरिक शून्य राजनीतिक हिंसा के प्रति पूरी तरह अभ्यस्त हो चुके हैं। इसलिए आतंक का नाटक अराजकता की जज़्बाती दहशत को पैदा करता हुआ लोगों को इस अहसास से भर देता है कि सामाजिक व्यवस्था ध्वस्त होने वाली है। खूनी संघर्ष से भरी शताब्दियों के बाद हम हिंसा के ब्लैक होल से रेंगकर बाहर निकल आए हैंलेकिन हम महसूस करते हैं कि ब्लैक होल अभी भी मौजूद हैऔर धीरज के साथ हमें फिर से निगल लेने की प्रतीक्षा कर रहा है। थोड़ी-सी वीभत्स क्रूरताएँ होती हैं और हमें लगता है कि हम वापस उसमें धँस रहे हैं। इन दहशतों को शान्त करने के लिएराज्य आतंकवाद के नाटक का जवाब सुरक्षा के अपने नाटक से देने को बाध्य होता है। आतंकवाद का सबसे सक्षम जवाब अच्छे ख़ुफ़िया तन्त्र और आतंकवाद का पोषण करने वाले वित्तीय तन्त्रों के खिलाफ़ गुप्त कार्रवाई से दिया जा सकता हैलेकिन ये ऐसी चीज़ें नहीं हैं जिनको नागरिक अपने टेलीविज़नों पर देख सकते हों। नागरिकों ने तो वर्ल्डट्रेड सेंटर के ध्वस्त होने का आतंकवादी ड्रामा देखा है। राज्य उसके जवाब में उतने ही प्रभावशाली ड्रामे का प्रदर्शन करने को बाध्य महसूस करता हैजिसमें और भी ज़्यादा आग और धुआँ हो। इसलिए खामोशी के साथ और कारगर ढंग से कार्रवाई करने की बजायराज्य एक महाशक्तिशाली तूफ़ान खड़ा करता है जो अक्सर आतंकवादियों के सबसे प्रिय सपनों को साकार कर देता है। तब फिर राज्य को आतंकवाद से किस तरह निपटना चाहिएएक सफल आतंकवाद-विरोधी संघर्ष तीन मोर्चों पर किया जाना चाहिए। पहलासरकारें आतंकी तन्त्रों के खिलाफ़ गुप्त कार्रवाइयाँ करें। दूसरामीडिया को चाहिए कि वह स्थितियों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश न करे और सार्वजनिक उन्माद को टाले। आतंक का नाटक प्रचार के बिना सफल नहीं हो सकता। दुर्भाग्य से मीडिया यह प्रचार निःशुल्क रूप से कुछ ज़्यादा ही मुहैया कराता है। यह आतंकवादी हमलों को अविवेकपूर्ण ढंग से रिपोर्ट करता है और उनके खतरे को बहुत ज़्यादा बढ़ा-चढ़ाकर पेश करता हैक्योंकि आतंकवाद की रिपोर्टें मधुमेह या वायु-प्रदूषण की रिपोर्टों की तुलना में अखबारों को कहीं ज़्यादा बेचती हैं। तीसरा मोर्चा है हम में से हर व्यक्ति की कल्पना-शक्ति। आतंकवादी हमारी कल्पना-शक्ति को बन्धक बना लेते हैंऔर हमारे ही खिलाफ़ उसका इस्तेमाल करते हैं। हम आतंकवादी हमले को बार-बार अपने दिमाग़ के रंगमंच पर दोहराते हैं - 9/11 को या किसी ताज़ा आत्मघाती बम-विस्फोट को याद करते हुए। आतंकवादी सौ लोगों को मारते हैं - और 10 करोड़ लोगों में यह कल्पना जगाते हैं कि हर दरख्त के पीछे कोई हत्यारा छिपा बैठा है। यह हर नागरिक की ज़िम्मेदारी है कि वह अपनी कल्पना-शक्ति को आतंकवादियों की गिरफ्त से मुक्त करेऔर खुद को इस खतरे के वास्तविक पैमाने की याद दिलाए। यह हमारा अपना अन्दरूनी आतंक है जो आतंकवाद के बारे में मीडिया को ग्रस्त करनेऔर सरकार को ज़रूरत से ज़्यादा प्रतिक्रिया करने को उकसाता है। इस तरह आतंकवाद की सफलता या विफलता हम पर निर्भर करती है। अगर हम अपनी कल्पना-शक्ति को आतंकवादियों द्वारा बन्धक बना लिए जाने की छूट देते हैंऔर फिर अपने भयों पर ज़रूरत से ज़्यादा प्रतिक्रिया करते हैंतो आतंकवाद सफल होगा। अगर हम अपनी कल्पना-शक्ति को आतंकवादियों से आज़ाद कर लेते हैं और सन्तुलित तथा शान्त भाव से प्रतिक्रिया करते हैंतो आतंकवाद विफल हो जाएगा। आतंकवाद का परमाणु सम्पन्न होना अब तक जो विश्लेषण हमने किया है वह आतंकवाद के उस रूप पर लागू होता है जिस रूप में उसे हम पिछली दो सदियों से जानते रहे हैंऔर जिस रूप में वह न्यूयॉर्कलन्दनपेरिस और तेल अवीव की सड़कों पर खुद को प्रकट करता हैलेकिन अगर सामूहिक नरसंहार के हथियार आतंकवादियों के हाथ लग जाते हैंतो सिर्फ़ आतंकवाद की ही नहींबल्कि राज्य और वैश्विक राजनीतियों की प्रकृति भी ज़बरदस्त तरीके से बदल जाएगी। अगर मुट्ठी-भर कट्टरपन्थियों का प्रतिनिधित्व करने वाले छोटे-छोटे संगठन पूरे-के-पूरे नगरों को तबाह कर सकेंगे और लाखों लोगों को मार सकेंगेतो कोई सार्वजनिक क्षेत्र राजनीतिक हिंसा से मुक्त नहीं रह पाएगा।

इसलिए जहाँ आज का आतंकवाद ज़्यादातर एक नाटक है वहीं भविष्य में परमाणु आतंकवाद साइबर-आतंकवाद एजेंड-आतंकवाद (बायोटेरिज़्म) कहीं ज़्यादा गम्भीर खतरा पेश करेगा और सरकारों से बहुत अधिक कठोर प्रतिक्रिया की माँग करेगा। ठीक इसी वज़ह से हमें इस तरह के परिकल्पित भावी परिदृश्यों को उन वास्तविक आतंकवादी हमलों से अलग करने के मामले में सावधानी बरतनी ज़रूरी है जिन हमलों को हम अब तक देखते रहे हैं। किसी दिन आतंकवादियों के हाथ परमाणु बम लग जाने से उनके द्वारा न्यूयॉर्क या लन्दन को तबाह कर देने का भय उस आतंकवादी के प्रति उन्मादपूर्ण अतिवादी प्रतिक्रिया को उचित नहीं ठहरा देता जो एक स्वचालित राइफल या बेक्राबू ट्रक के माध्यम से सड़क चलते दर्जन-भर लोगों को मार देता है। इससे भी ज़्यादा सावधानी सरकारों को तमाम असन्तुष्ट समुदायों पर इस आधार पर जुल्म करने के मामले में बरतनी ज़रूरी है कि वे एक दिन परमाणु हथियार हासिल कर सकते हैं या वे हमारी स्वचालित कारों को हैक कर उनको हत्यारे रोबोटों के झुण्ड में बदल सकते हैं। इसी तरह हालाँकि सरकारों को निश्चय ही उग्रवादी संगठनों पर निगाह रखनी चाहिए और उनको सामूहिक जनसंहार करने वाले हथियारों को नियन्त्रण में लेने से रोकने की कार्रवाई करनी चाहिए लेकिन उनके लिए यह ज़रूरी है कि वे परमाणु आतंकवाद के भय को दूसरी सम्भावित रूप से खतरनाक स्थितियों के समक्ष रखकर देखें। पिछले दो दशकों में संयुक्त राज्य अमेरिका ने आतंकवाद के खिलाफ अपने युद्ध पर खरबों डॉलर और ढेर सारी राजनीतिक संसाधन बर्बाद किए हैं। जॉर्ज डब्ल्यू बुश ए टोनी ब्लेयर ए बराक ओबामा और उनके प्रशासन किसी हद तक यह उचित तर्क दे सकते हैं कि उन्होंने आतंकवादियों को खदेड़कर उनको परमाणु हथियार हासिल करने के बारे में सोचने की बजाय अपनी जान बचाने के बारे में सोचने पर मजबूर कर दिया है। इस तरह मुमकिन है कि उन्होंने दुनिया को परमाणु 9/11 से बचा लिया हो। चूँकि यह एक प्रतितथ्यात्मक (काउंटरफैक्टुअल) दावा है - 'अगर हमने आतंक के खिलाफ युद्ध न छेड़ा होता तो अल-क्वायदा ने परमाणु हथियार हासिल कर लिए होते' - इसलिए यह जाँचना मुश्किल है कि यह दावा सही है या नहीं। लेकिन यह बात हम पक्के तौर पर कह सकते हैं कि आतंक के खिलाफ युद्ध जारी रखकर अमेरिकियों और उनके मित्रों ने समूचे विश्व में न सिर्फ़ अपरिमित विनाश को अंजाम दिया है बल्कि वह क्रीमल चुकाने की ज़िम्मेदारी भी मोल ले ली है जिसको अर्थशास्त्री 'ऑपर्ट्युनिटी कॉस्ट' की संज्ञा देते हैं। आतंकवाद से लड़ने पर निवेश किए गए पैसों समय और राजनीतिक संसाधनों को ग्लोबल वर्मिगएड्स और गरीबी से लड़ने ए उप-सहारा अफ्रीका में शान्ति और समृद्धि लाने या रूस और चीन के साथ बेहतर सम्बन्ध बनाने पर निवेश नहीं किया गया। अगर न्यूयॉर्क या लन्दन अन्ततः अटलांटिक महासागर के बढ़ते हुए जलस्तर की वज़ह से डूब जाते हैं या अगर रूस के साथ बढ़ता हुआ तनाव खुली लड़ाई के रूप में भड़क उठता है तो बहुत मुमकिन है कि लोग बुशब्लेयर और ओबामा पर ग़लत मोर्चे पर ध्यान देने का आरोप लगाएँ। वास्तविक समय में प्राथमिकताओं को तय करना मुश्किल होता है जबकि पश्चात-दृष्टि के साथ परिस्थितियों का पूर्वानुमान करना बहुत आसान होता है। हम राजनेताओं पर उन विनाशों को रोक पाने में असमर्थ रहने का आरोप लगाते हैं जो हो चुके होते हैं वहीं खुशी-खुशी उन आपदाओं के प्रति अनजान बने रहते हैं जो कभी घटित नहीं हुई होतीं। लोग 1990 के दशक के क्लिंटन प्रशासन की ओर वापस मुड़कर देखते हैं और उस पर अल-क्वायदा के खतरों की उपेक्षा करने का आरोप लगाते हैं लेकिन 1990 के दशक में बहुत थोड़े-से लोगों ने कल्पना की होगी कि इस्लामी आतंकवादी न्यूयॉर्क की गगनचुम्बी मीनारों से यात्री हवाई जहाज़ों को टकराकर एक वैश्विक टकराव की आग भड़का देने वाले थे। इसके विपरीत बहुत-से लोगों को भय था कि रूस पूरी तरह ध्वस्त हो सकता है और न केवल अपने विशाल अधिकार-क्षेत्र बल्कि हज़ारों परमाणु और जैविक बमों पर भी अपना नियन्त्रण खो सकता है। एक अतिरिक्त चिन्ता यह थी कि पूर्व यूगोस्लाविया के खूनी युद्ध पूर्वी यूरोप के दूसरे हिस्सों तक फैल सकते थे और उनके नतीजे में हंगरी और रोमानिया के बीच बुल्गारिया और तुर्की के बीच या पोलैंड और उक्रेन के बीच टकराव पैदा हो सकते थे। बहुत-से लोग तो जर्मनी के एकीकरण तक को लेकर असहज महसूस कर रहे थे। थर्ड राइख के पतन के महज़ साढ़े चार दशकों बाद बहुत-से लोग अपने मन में जर्मन शक्ति को लेकर सहज खौफ़ पाले हुए थे। क्या जर्मनी सोवियत खौफ़ से आज़ाद होकर यूरोपीय महाद्वीप पर वर्चस्व कायम करने वाली महाशक्ति नहीं बन जाएगा और चीन सोवियत खेमे के ध्वस्त होने से चौकन्ना चीन अपने सुधारों की कार्रवाई को त्याग सकता है और सख्तमाओवादी नीतियों पर वापस लौट सकता है और अन्त में उत्तर कोरिया का एक विशाल संस्करण बन सकता है। आज हम इन डरावनी परिकल्पनाओं का मज़ाक़ उड़ा सकते हैं क्योंकि ऐसा वास्तव में हुआ नहीं। रूस में स्थिति स्थिर रही। यूरोप का ज़्यादातर पूर्वी हिस्सा यूरोपीय यूनियन में शांतिपूर्ण ढंग से आत्मसात कर लिया गया एकीकृत जर्मनी को आज आज़ाद दुनिया के नेता की तरह देखा जाता है और चीन समूचे भूमण्डल का आर्थिक इंजन बन चुका है। यह सब आंशिक रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय यूनियन की रचनात्मक नीतियों की वज़ह से हासिल किया जा सका। क्या यह अक्लमन्दी होती कि 1990 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय यूनियन ने पूर्व सोवियत खेमे या चीन की स्थिति पर ध्यान केन्द्रित करने की बजाय इस्लामी अतिवादियों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया होता हम हर आकस्मिक आपदा के लिए पहले से तैयार नहीं हो सकते।

निष्कर्ष :

यद्यपि हमें निश्चय ही परमाणु आतंकवाद को रोकना चाहिए लेकिन यह मनुष्यता की कार्यसूची का पहला मुद्दा नहीं हो सकता। और हमें निश्चय ही परमाणु आतंकवाद के सैद्धान्तिक खतरे का इस्तेमाल साधारण आतंकवाद के प्रति अतिवादी प्रतिक्रिया को उचित ठहराने के लिए तो नहीं ही करना चाहिए। ये अलग तरह की समस्याएँ हैं जो अलग तरह के समाधानों की माँग करती हैं। हमारी कोशिशों के बावजूद अगर आतंकवादी समूह अन्ततः सामूहिक नरसंहार के हथियारों को कब्जे में ले लेते हैं तो यह अनुमान लगा पाना मुश्किल है कि राजनीतिक संघर्षों को किस तरह अंजाम दिया जाएगा लेकिन वे इक्कीसवीं सदी के आरम्भिक दौर की आतंकवादी और आतंकवाद-विरोधी मुहिमों से बहुत भिन्न होंगे। अगर 2050 में दुनिया परमाणु आतंकवादियों और जैवआतंकवादियों से भरी होगी तो इनके शिकार लोग 2013 की दुनिया को अविश्वास का पुट लिए हसरत-भरी निगाहों से मुड़कर देखेंगे : इतना सुरक्षित जीवन जीने के बावजूद ये लोग इतना भयभीत कैसे महसूस कर सकते थे निश्चय ही खतरे के हमारे मौजूदा अहसास को भड़काने वाली चीज़ सिर्फ आतंकवाद नहीं है। ढेरों विशेषज्ञों और साधारण लोगों के मन में यह भय समाया हुआ है कि द थर्ड वर्ल्डवॉर क़रीब ही है मानो यह फ़िल्म हम एक सदी पहले देख चुके हों। जिस तरह 1914 में हुआ था उसी तरह 2013 में महाशक्तियों के बीच बढ़ता हुआ तनाव और उसी के साथ जुड़ी वैश्विक समस्याएँ हमें भूमण्डलीय युद्ध की दिशा में घसीटती लग रही हैं। क्या यह व्यग्रता आतंकवाद को लेकर हमारे अतिरंजित भय से ज़्यादा उचित है एक चीज़ जो बेहतर ढंग से एकजुट होने और सरहदों तथा दिमागों को खुला रखने में यूरोप और कुल मिलाकर दुनिया की मदद कर सकती है वह है आतंकवाद से सम्बन्धित ख़ौफ़ के उन्माद को कम करके देखना। अगर आतंकवादियों के ख़ौफ़ को ज़रूरत से ज़्यादा तूल दिए जाने की वज़ह से स्वतन्त्रता और सहिष्णुता का यूरोपीय प्रयोग असफल हो जाता है तो यह बेहद दुर्भाग्यपूर्ण होगा। यह न सिर्फ़ आतंकवादियों के लक्ष्यों को पूरा करेगा बल्कि इन मुट्ठीभर मतान्धों को मानव-जाति के भविष्य में भरपूर दखलन्दाज़ी करने की गुंजाइश भी देगा। आतंकवाद मनुष्यता के बहुत मामूली और कमज़ोर हिस्से का हथियार है। अतः आतंकवाद भूमण्डलीय राजनीति पर भारी नहीं पड़ना चाहिए। भारत अपनी स्वतंत्रता के पश्चात से ही आतंकवाद की रोकथाम और उन्मूलन के प्रति सजग और जागरूक रहा है।

संदर्भ :

1. दास, अरविंद. (1992). दि रिपब्लिक ऑफ बिहार. दिल्ली: पेंग्युइन बुक्स.
2. बिहार, एचडब्ल्यू. (1980). राइजिंग कूलाक्स एंड बैकवर्ड क्लासेज इन बिहार. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 15(2), 64-74.
3. जाफ़्रेलॉट, सी. (2003). इन्डिया'स साइलेन्ट रिवोलूशन: दिराइज ऑफ दि लोअर कास्ट्स इन नॉर्थ इन्डिया. लन्दन: सी. हर्स्ट एंड को.
4. शर्मा, एन. (2005). अग्रेरिअन रिलेशन्स एंड सोशियो- इकोनॉमिक चेन्ज इन बिहार. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 40 (10), 960-972.
5. प्रसाद, पी.एच. (1975). अग्रेरिअन अनरेस्ट एंड इकोनॉमिक चेंज इन रूरल बिहार: दि थ्री केस स्टडीज. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 10 (24), 931-937.
6. सिन्हा, ए. (1996). सोशल मोबलाइजेशन इन बिहार: ब्यूरोकेटिक फ्यूडलिज्म एंड डिस्ट्रीब्यूटिवजस्टिस. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 31 (51)ए 3287-3289.
7. रोबीन, सायरिल. (2009). बिहार: दिन्यूस्ट्रानगहोल्ड ऑफ ओबीसी पॉलिटिक्स इन दिराइज ऑफ दिप्लेबियन्स दि चेन्जिंग फेस ऑफ इन्डियन लेजिसलेटिव असेम्बलीज (पृष्ठ 65-102). नई दिल्ली : रूटलेज.
8. ब्रटेल्स, लैरी.एम. (2008). दिस्टडी ऑफ इलेक्टोरल बिहैवियर. इन जेन ई. लेगली, एडिट) द ऑक्सफोर्ड हैन्डबुक ऑफ अमेरिकन इलेक्शन्स एंड पॉलिटिकल बिहैवियर (पृष्ठ 239-261). न्यूयॉर्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
9. राजलक्ष्मी, टी.के. (2001). लैंडराइट एंड रांग्स इन बिहार. फ्रन्टलाइन, 18 (22), सिंह, संतोष. (2012). एन्डरसन, आर. एंड ए. हीथ. (2003). सोशल आइडेन्टीटी ऐन्ड पॉलिटिकल क्लीवेज्स: दि रोल ऑफ पॉलिटिकल कॉन्टेक्ट. जर्नल ऑफ दि रॉयल स्टेटिस्टिकल सोसाइटीए 166(3), 301-327.
10. बटलर, डी. एंड स्टोक्स, डी.ई. (1974). पॉलिटिकल चेन्ज इन ब्रिटेन : द इवोलुशन ऑफ इलेक्ट. लंदन : मैकमिलन प्रेस.